RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

ओ३म्

साप्ताहिक

आर्य मर्यादा

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख पत्र

वर्ष: 74, अंक : 39 एक प्रति 2 : रुपये

रविवार 17 दिसम्बर , 2017

विक्रमी सम्वत् 2074, सृष्टि सम्वत् 1960853118

दयानन्दाब्द : 194 वार्षिक शुल्क : 100 रुपये

आजीवन शुल्क : 1000 रुपये

दूरभाष : 0181-2292926, 5062726

E-mail: apspunjab2010@gmail.com,

www.aryapratinidhisabha.org

वर्ष–74, अंक : 39, 14-17 दिसम्बर 2017 तदनुसार 3 पौष सम्वत् 2074 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

सर्वस्व त्यागी-स्वामी श्रद्धानन्द

ले०-श्री सुदर्शन शर्मा जी प्रधान आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब

देश, धर्म और वैदिक संस्कृति के लिए अपना सर्वस्व त्याग करने वालों में स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम हमेशा अमर रहेगा। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का जीवन आर्यों के लिए अनुकरणीय है। आर्य जगत् में स्वामी श्रद्धानन्द जी के सर्वस्व त्याग एवं बलिदान को हमेशा श्रद्धा से याद किया जाएगा। गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना के लिए उन्होंने अपना सर्वस्व त्याग कर सर्वं वै पूर्णं स्वाहा की भावना को सार्थक किया। वास्तव में महापुरूषों का जीवन संसार के कल्याण के लिए होता है। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज भी उनमें से एक थे। भारत में अनेक महापुरूषों ने जन्म लिया। किसी ने धर्म के लिए अपने जीवन का उत्सर्ग किया, किसी ने देश के लिए, किसी ने जाति के लिए अपना जीवन लगा दिया। परन्तु देश धर्म संस्कृति, सभ्यता, राष्ट्रीय शिक्षा आदि समग्र क्षेत्रों में संतुलित एवं सर्वाग्रणी किसी का स्वरूप है तो वह अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्द जी का है। वह धार्मिक नेता थे और राष्ट्र नेता भी। वह सामाजिक नेता थे और आध्यात्मिक नेता भी थे। शिक्षा के क्षेत्र में उन्होंने जिस गुरूकुल शिक्षा प्रणाली को स्थापित किया था उससे पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली का खोखलापन प्रकट हो गया था और भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन को जन्म दिया था। स्वामी श्रद्धानन्द जी एक पूर्ण नेता थे। सम्पूर्ण क्रान्ति के प्रतीक थे। वीरता अदम्य उत्साह, बलिदान उनके रोम-रोम में व्याप्त थे। निर्भयता की भावना, वाणी में अपूर्व ओज, दीन दुखियों के प्रति दया की भावना स्वामी श्रद्धानन्द में सदा दृष्टिगोचर होती थी।

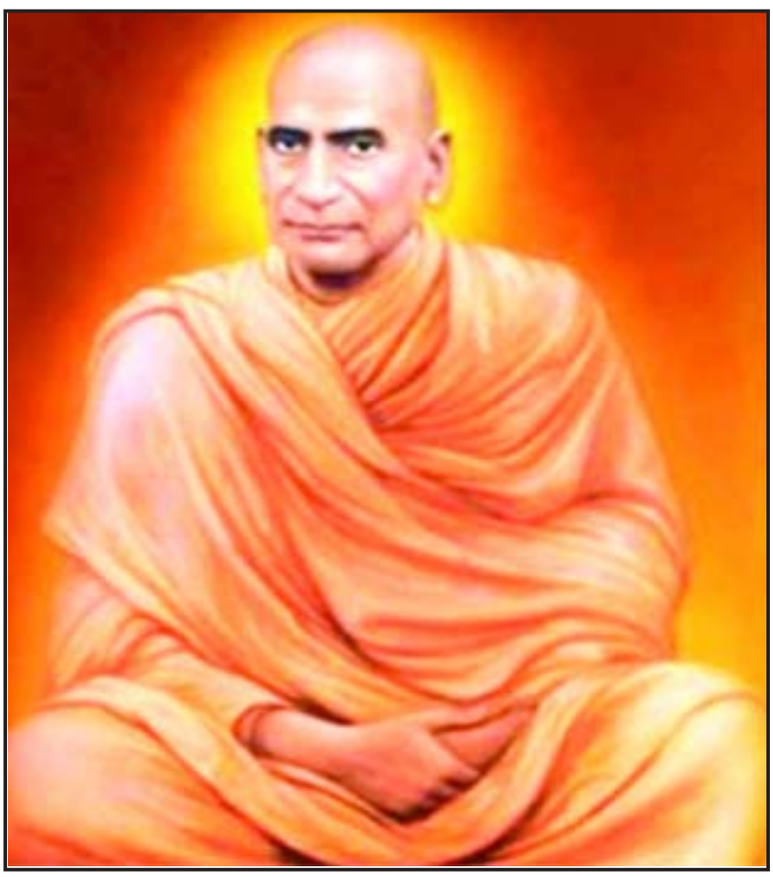

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने ब्रिटिश शासन काल में दिल्ली के चांदनी चौक में क्रूर अंग्रेजी शासक के सैनिकों की संगीनों के सामने अपनी छाती दिखाकर देश की स्वतन्त्रता के लिए अपने आपको बलि के रूप में प्रस्तुत करके देश के प्रति जनता में बलिदान करने की भावना जागृत की। साहस एवं निर्भीकता का ऐसा उदाहारण अपूर्व था। स्वामी श्रद्धानन्द जी महात्मा थे, ऋषि थे, तपस्वी थे और योगी थे। उन्होंने देश का भविष्य देखा। तत्कालीन नेताओं की तुष्टिकरण की नीति और ब्रिटिश शासन की कूटनीति को अन्तर्दृष्टि से देखा। भारत की राष्ट्रीयता का भविष्य खण्डित प्रतीत हुआ तो भारत में एक राष्ट्रीयता के संगठन के लिए एक जाति, एक धर्म, एक भाषा के प्रचार के लिए शुद्धि आन्दोलन एवं शुद्धि का कार्य प्रारम्भ किया। सम्प्रदायवाद से भारत में देशद्रोही और गद्दार व्यक्तियों का बहुल होने के कारण भारत अखण्ड़त नहीं रह सकेगा, इसी के लिए भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के रक्षार्थ उन्होंने शुद्धि का कार्य प्रारम्भ किया था। यदि देश के अन्य नेता भी स्वामी श्रद्धानन्द जी का साथ देते तो भारत का विभाजन नहीं होता। महात्मा गांधी जी यद्यपि बहुत वर्षों बाद कुछ समझे परन्तु उनमें शुद्धि कार्य का साहस उत्पन्न नहीं हुआ, तथापि उन्होंने हरिजन उद्धार आन्दोलन शुरू किया।

भारत की राष्ट्रीय भावना की रक्षा के लिए महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने एक धर्म, एक भाषा, एक जाति, ऊंच नीच भाव, गरीब अमीर भेद शून्य समभाव की जो महती रूपरेखा प्रसारित की थी उसी को विशेष रूप से स्वामी श्रद्धानन्द जी ने शुद्धि कार्य के द्वारा क्रियान्वित किया था। आज उसी आन्दोलन को राष्ट्रीय स्तर पर चलाना चाहिए। स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान शुद्धि कार्य के कारण हुआ। यह राष्ट्र कार्य के लिए बलिदान था

(शेष पृष्ठ 8 पर)

स्वामी श्रद्धानन्द जी : जैसे मैंने उन्हें जाना

ले.-महात्मा गान्धी

जिस बात की सम्भावना थी, वही हुई। आज से लगभग 6 मास पूर्व स्वामी श्रद्धानन्द जी साबरमती में एक-दो दिन ठहरे। बातचीत के प्रसंग में उन्हें मुझे बताया कि उनके पास प्राय: ऐसे पत्र आते रहते हैं जिनमें उन्हें कत्ल करने की धमकी दी होती है। ऐसा कौन-सा देश है, जहाँ के सुधारक को अपने लक्ष्य के लिए अपने प्राणों की बाजी नहीं लगानी पड़ी?

स्वामी जी एक सुधारक थे। वह वाक्शूर नहीं, कर्मशूर थे। उनका विश्वास जीवित-जागृत था। उसी के कारण उन्हें यह विपत्ति झेलनी पड़ी। वह वीरता की साक्षात् मूर्ति थे। उन्होंने आपत्ति में भी कभी साहस नहीं खोया। वह एक योद्धा थे और एक योद्धा रोगशय्या पर नहीं, अपितु लड़ाई के मैदान में मरना पसन्द करता है।

प्रभु उनके लिए एक शहीद की मृत्यु की कामना करते थे। इसलिए रोगशय्या में पड़े रहने पर भी एक हत्यारे के हाथों उनकी मृत्यु हुई। गीता के शब्दों में-''सुखिन: क्षत्रिया: पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्।''

मृत्यु एक वरदान है। परन्तु उस योद्धा के लिए वह दुगुना वरदान है, जो अपने लक्ष्य तथा सत्य के लिए प्राण दे देता है। यह मृत्यु कोई भयंकर दैत्य या पिशाच नहीं। वह सबसे अधिक सच्चा मित्र है। वह हमें कष्टों से मुक्त करता है। हमारी इच्छा न होते हुए भी वह वस्तुत: हमारा सहायक होता है। वह सदा हमें नये अवसर और नई आशाएँ प्रदान करता है। वह मृत्यु निद्रा के समान मधुर नव-जीवन प्रदान करती है। फिर भी मित्र की मृत्यु पर शोक मनाने का रिवाज चल रहा है। परन्तु शहीद की मृत्यु पर इस प्रकार के रिवाज का कोई महत्त्व नहीं रह जाता। इसलिए मुझे उनकी मृत्यु पर कोई शोक नहीं। मुझे तो उनसे तथा उनके स्वजनों से ईर्ष्या होती है क्योंकि यद्यपि स्वामी जी की देह-लीला समाप्त हो गई, तथापि वह जीवित हैं। वह उस समय की अपेक्षा अब अधिक सच्चे अर्थ में जीवित हैं, जब वह अपनी विशाल काया के साथ हमारे बीच विचरण किया करते थे। ऐसी शानदार मृत्यु के कारण वह देश जिसमें उन्होंने जन्म लिया और वह राष्ट्र जिससे उनका सम्बन्ध था, वस्तुत: बधाई के पात्र हैं। वह सम्पूर्ण जीवन एक वीर की तरह जीये और अन्त में वीर की तरह ही उनकी मृत्यु हुई।

मेरा स्वामी जी से प्रथम परिचय तब हुआ, जब वह महात्मा मुंशीराम थे और वह भी पत्र द्वारा। उस समय वह गुरुकुल काँगड़ी के, जो शिक्षा-क्षेत्र में उनकी एक मौलिक महान् देन है-मुख्याधिष्ठाता थे। वह पश्चिम की प्रचलित पद्धतियों से सन्तुष्ट नहीं थे। वह अपने देश के बच्चों को वैदिक शिक्षा से अनुप्राणित कर देना चाहते थे। वह उन्हें अंग्रेज़ी से नहीं, प्रत्युत हिन्दी के माध्यम से शिक्षा देते थे। वह चाहते थे कि उनके शिष्य शिक्षाकाल में सदा ब्रह्मचारी रहें। उन्होंने अपने ब्रह्मचारियों को दक्षिण अफ्रीका में चल रहे सत्याग्रह की सहायतार्थ एकत्र किये जा रहे चन्दे में अपना योगदान करने के लिए प्रेरणा की थी। इनकी इच्छा थी इस कार्य के लिए उनके ब्रह्मचारी मजदूरी करने वाले कुलियों की तरह कठोर परिश्रम करें और यह उचित ही था, क्योंकि क्या वह सत्याग्रह कुलियों का नहीं था? ब्रह्मचारियों ने समय की माँग को समझा और मेहनत-मज़दूरी करके जो धन कमाया, स्वामी जी ने वह मेरे पास भेज दिया। इस विषय में उन्होंने हिन्दी में लिखा हुआ एक पत्र भी मुझे भेजा। उस पत्र में उन्होंने मुझे 'मेरे प्यारे भाई' करके सम्बोधन किया था। इस घटना ने मुझे महात्मा मुंशीराम जी का प्रिय मित्र बना दिया। इससे पूर्व हम दोनों कभी नहीं मिले थे।

श्रीयुत एण्ड्रूज महोदय ने हम दोनों के बीच कड़ी का काम किया। वह इस बात के उत्सुक थे कि जब कभी मैं अपने देश (भारत) में वापस जाऊँ तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर, प्रिंसिपल रुद्र तथा महात्मा मुंशीराम से-जिन्हें मैं उनकी त्रिमूर्ति कहा करता था, अवश्य परिचय प्राप्त करूँ। स्वामी जी के उक्त पत्र मिलने के बाद से हम दोनों सगे भाई बन गए। सन् 1915 ई० में गुरुकुल काँगड़ी में हम दोनों परस्पर मिले और प्रत्येक मिलन में हम निकट से निकटतर होते गये और एक-दूसरे को अच्छी तरह समझने लगे। उनका प्राचीन भारत, संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के प्रति विलक्षण प्रेम था। इसमें सन्देह नहीं कि वह इस असहयोग आन्दोलन के जन्म से भी पूर्व असहयोगी थे। वह स्वराज्य प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आतुर थे। उन्हें अस्पृश्यता से घृणा थी और वह इन अस्पृश्यों की दशा सुधारने के लिए सदा उत्सुक रहते थे। वह इनकी स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध सहन नहीं कर सकते थे।

जब देश में रॉलट-एक्ट-विरोधी आन्दोलन छिड़ा, उस समय वह उसका स्वागत करने वाले अग्रणी पुरुषों में से एक थे। उन्होंने एक अत्यन्त उत्साहवर्धक पत्र मुझे लिखा। परन्तु अमृतसर तथा वीरमगाँव की दुर्घटनाओं के कारण जो मुझे आन्दोलन स्थगित करना पड़ा, उससे वह सहमत न हुए।

इसके बाद से हमारे मतभेद बढ़ने शुरू हो गए। परन्तु इस निमित्त से उन्होंने हम दोनों में विद्यमान भ्रातृभाव के मधुर सम्बन्ध में कभी ठेस नहीं पहुँचाई। इस मतभेद के समय मुझे उनकी बच्चों जैसी सरल प्रकृति का परिचय मिला। वह जिसे सत्य समझते थे, उसे खुलेआम कहने में संकोच नहीं करते थे, चाहे उसका परिणाम कुछ भी क्यों न हो।

समय के बीतने के साथ-साथ मैंने पाया कि हम दोनों की प्रकृति में पर्याप्त भेद हैं, परन्तु यह भिन्नता मेरे लिए स्वामी जी की आत्मा की महानता को ही सिद्ध करने वाली हुई। खुलेआम विचार करना कोई अपराध नहीं; यह एक गुण है, सच्चाई की परख है। स्वामी जी के विचारों में सदा स्पष्टवादिता होती थी।

बारदोली आन्दोलन सम्बन्धी निर्णय ने उनका दिल तोड़ दिया था। वह मुझसे निराश हो गए। उन्होंने बलपूर्वक मेरे इस निर्णय का विरोध किया। मेरे पास भेजे गये निजी पत्रों में तो यह विरोध और भी अधिक प्रबल होता था, परन्तु उन्होंने उतने ही बल के साथ उनमें मेरे प्रति स्नेह भाव भी प्रकट किया था। केवल पत्रों में ही अपना स्नेह प्रकट करके उन्हें सन्तोष नहीं हुआ; वह अवसर पाकर मुझसे अलग मिले, उन्होंने अपनी स्थिति स्पष्ट की और मेरी स्थिति को समझने का प्रयत्न किया। परन्तु मुझसे अलग मिलने का वास्तविक कारण, जैसा कि मुझे प्रतीत होता है, मुझे इस बात का विश्वास दिलाना था कि वह अब भी मुझे अपना छोटा भाई समझकर प्रेम करते हैं। उसमें किसी प्रकार की कमी नहीं आई। मानो ऐसा विश्वास दिलाना वह आवश्यक समझते थे।

कुछ ही मास पूर्व स्वामी जी जब अन्तिम बार मुझसे साबरमती आश्रम में मिलने आये, उसका स्मरण कराये बिना मैं उस महान् सुधारक के जीवन-संस्मरण समाप्त नहीं करना चाहता। (उसके आधार पर) मैं अपने मुसलमान मित्रों को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि वह मुसलमानों के विद्वेषी न थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि वह कई मुसलमानों पर विश्वास नहीं करते थे, परन्तु उनके प्रति किसी प्रकार की दुर्भावना उसके मन में न थी। उनका विचार था कि हिन्दुओं को डराया जाता है, इसलिए वह चाहते थे कि हिंदू बहादुर बने और अपने जीवन एवं सम्मान की रक्षा स्वयं कर सकें। उन्होंने मुझे बताया कि इस विषय में मुझे गलत समझा गया है और उनके विरुद्ध कही जाने वाली अनेक बातों में सर्वथा निर्दोष हैं। उन्होंने मुझे बताया कि उनके पास कई धमकी भरे पत्र आये हैं। इसलिए उनके मित्रों ने उन्हें अकेला यात्रा करने में सचेत किया है। परन्तु दृढ़ ईश्वर-विश्वासी स्वामी ने कहा-''सिवाय परमात्मा के मैं किसका सहारा ढूँढूं? उनकी इच्छा के विपरीत घास की एक पत्ती भी नष्ट नहीं हो सकती। इसलिए मैं समझता हूँ जब तक वह प्रभु मेरे इस शरीर से कुछ सेवा लेना चाहते हैं, तब तक मेरा कुछ नहीं हो सकता।''

आश्रमवास के इस काल में उन्होंने आश्रमवासी बालक-बालिकाओं को उपदेश देते हुए बताया कि हिन्दू-धर्म की रक्षा का सर्वोत्तम साधन आंतरिक शुद्धि अर्थात् आत्म-शुद्धि है।

चरित्र-गठन तथा शरीर-निर्माण के लिए उन्होंने ब्रह्मचर्य की आवश्यकता पर सबसे अधिक बल दिया।

सम्पादकीय

सभी आर्य समाजें स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस मनाएं

महर्षि दयानन्द के द्वारा प्रारम्भ किए गए कार्यों को मूर्त्त रूप प्रदान करने के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने वाले अमर हुतात्मा स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का नाम आर्य जगत् में बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। महर्षि दयानन्द ने जिन कार्यों की नींव रखी थी या करने का संकल्प लिया था, उन्हें पूरा करने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी ने वसुधैव कुटुम्बकम् के आदर्श को अपने जीवन में अपनाया। उनके द्वारा किया गया प्रत्येक कार्य राष्ट्रहित के लिए था। आर्य जगत् उनके द्वारा किए गए कार्यों के लिए हमेशा उनका ऋणी रहेगा। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजों के अधिकारियों से निवेदन है कि वे अपनी-अपनी आर्य समाजों में तथा शिक्षण संस्थाओं में 23 दिसम्बर को स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान दिवस उत्साह के साथ मनाएं। उनके द्वारा किए गए कार्यों से लोगों को अवगत कराएं।

अमर बलिदानी स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज कर्मभूमि के अद्वितीय योद्धा थे जिन्होंने अपने अनुपम पुरूषार्थ एवं त्याग से आर्य समाज को एक नया रूप दिया। वकालत करते हुए उनकी गणना उस समय प्रसिद्ध वकीलों में होती थी। वे झूठे मुकद्दमे की पैरवी नहीं करते थे। मुन्शीराम के ऊपर जब आर्य समाज का रंग चढ़ गया तो उन्होंने वकालत छोड़कर वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब को अपने योगदान से देश भर में अग्रगण्य संस्थाओं में लाकर खड़ा कर दिया। उस समय उनके सामने ऐसे विद्यालय स्थापित करने का प्रस्ताव विचाराधीन था जिससे अंग्रेजी सत्ता के चंगुल से भारतीय विद्यार्थी बचाए जा सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होनें गुरूकुल कांगड़ी की स्थापना हरिद्वार में की और अंग्रेजी राज्यकाल में यह प्रथम विद्यालय था जिसमें शिक्षा का माध्यम हिन्दी रखा गया। लार्ड मैकाले ने जिस उद्देश्य की पूर्ति के तहत अंग्रेजी शिक्षा के द्वारा हमारी संस्कृति, सभ्यता को तहस-नहस करने का प्रयास किया था उसके बदले में स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गुरूकुल कांगडी की स्थापना करके एक नई क्रान्ति का सूत्रपात किया। इसी गुरूकुल कांगडी से अनेकों, विद्वान्, देशभक्त बलिदानी तैयार हुए। कल्याण मार्ग के पथिक महात्मा मुन्शीराम ने सर्वात्मना त्याग भावना से प्रेरित होकर अपनी जालन्धर वाली कोठी व सब सम्पत्ति आर्य समाज को दान कर दी। परमात्मा में उनकी असीम श्रद्धा थी इसलिए उन्होंने सन्यास के पश्चात अपना नाम श्रद्धानन्द रखवाया।

गुरूकुल कांगड़ी का प्रबन्ध आचार्य रामदेव को सौंप कर स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज दिल्ली में पधारे और यहां से उनकी राजनैतिक और धार्मिक गतिविधियों का प्रारम्भ हुआ। सन् 1922 में जब सिक्खों ने गुरू के बाग का सत्याग्रह प्रारम्भ किया और अंग्रेजी सरकार उस आन्दोलन को दबाने की तैयारी करने लगी तो इस समाचार को सुनकर स्वामी श्रद्धानन्द जी तुरन्त अमृतसर पहुंच गए और सत्याग्रह का संचालन उन्होंने स्वयं अपने हाथ में लिया। वीर सन्यासी ने गुरू का बाग सत्याग्रह के प्रथम जत्थे के प्रथम सत्याग्रही के रूप में अपने को प्रस्तुत किया और वे अंग्रेजी सरकार द्वारा गिरफ्तार कर लिए गए। महात्मा गांधी द्वारा चलाए गए असहयोग आन्दोलन में स्वामी जी ने सक्रिय भाग लिया और उस समय के देश के अग्रिम नेताओं में दिखाई दिए। अमृतसर के जलियांवाला बाग में हुई क्रूर घटना को देखकर पंजाब की भूमि प्रकम्पित हो उठी। ऐसी स्थिति में कांग्रेस का नाम लेने वाला भी पंजाब में दिखाई नहीं देता था। तब स्वामी जी ने कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में बुलाने का प्रस्ताव किया और स्वयं उनके स्वागताध्यक्ष बनें। कांग्रेस के इतिहास में सर्वप्रथम स्वामी श्रद्धानन्द जी ने अपना भाषण हिन्दी में पढ़ा। 1919 में जब दिल्ली में कांग्रेस की सभाएं और जलूस बन्द करने का आदेश दिया गया तो उस समय स्वामी श्रद्धानन्द जी के नेतृत्व में एक बहुत बड़ा जलूस निकाला गया। चांदनी चौक पर जलूस को रोककर चेतावनी दी गई कि पीछे हट जाओ नहीं तो गोली चला दी जाएगी। उस समय स्वामी श्रद्धानन्द जी ने गोरों की संगीनों के सामने अपना सीना तानकर कहा कि है हिम्मत है तो पहले गोली मुझ पर चलाओ बाद में सत्याग्रहियों पर चलाना। स्वामी जी की निर्भीकता को देखकर जवानों को संगीने हटा लेने का आदेश दिया गया।

स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज हिन्दु मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। इसलिए मुसलमानों ने जामा मस्जिद के मैम्बर पर खड़े होकर उपदेश करने की प्रार्थना की। इस्लाम के इतिहास में यह पहली घटना थी कि किसी गैर मुस्लिम को इस प्रकार का सम्मान दिया गया हो। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने पवित्र वेद मन्त्र **त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधाते सुम्नमीमहे।।** के उच्चारण द्वारा जामा मस्जिद के मैम्बर से हिन्दुओं और मुसलमानों को सम्बोधित किया था। परन्तु कांग्रेस के मुस्लिम तुष्टीकरण की नीति के कारण स्वामी श्रद्धानन्द जी ने कांग्रेस से त्यागपत्र दे दिया और खुले रूप से भारतीयकरण का कार्य अपने हाथ में लिया। सर्वप्रथम उन्होंने आगरा के मलकाने राजपूतों को स्वधर्म में वापस लेकर इस महान् आन्दोलन का सूत्रपात किया। स्वामी श्रद्धानन्द के इस कार्य से कुछ साम्प्रदायिक लोग उनसे नाराज हो गए और 23 दिसम्बर 1926 को एक मतान्ध साम्प्रदायिक अब्दुल रसीद ने गाली मारकर हत्या कर दी। स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने जीवन पर्यन्त देश, धर्म और जाति के लिए सर्वस्व बलिदान किया और अन्तिम क्षणों में अपना भौतिक शरीर भी राष्ट्र को अर्पण कर दिया। स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा किए गए मानवता के तथा राष्ट्रहित के कार्यों को हमेशा याद किया जाएगा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान राष्ट्रहित के लिए था। इसीलिए इस दिन को बहुत ही उत्साह के साथ मनाना चाहिए। स्वामी श्रद्धानन्द जी का सम्पूर्ण जीवन प्रेरणादायक है। राष्ट्रहित में अपना सर्वस्व त्याग करने वाले इस संसार में बहुत विरले होते हैं। किस प्रकार निराशा भरे जीवन से उठकर एक साधारण मानव महामानव बन सकता है? इसकी उज्जवल प्रेरणा हमें स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन से मिलती है। इसीलिए आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब से सम्बन्धित सभी आर्य समाजें एवं शिक्षण संस्थाएं 23 दिसम्बर को स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज का बलिदान दिवस धूमधाम से मनाएं। स्वामी श्रद्धानन्द जी द्वारा किए गए कार्यों को आगे बढ़ाना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धाजंलि है।

प्रेम भारद्वाज
सम्पादक एवं सभा महामन्त्री

38वां वार्षिक उत्सव

आर्य समाज वेद मन्दिर लसूड़ी मोहल्ला, बस्ती दानिशमन्दा जालन्धर का 38वां वार्षिक उत्सव दिनांक 17 दिसम्बर से 24 दिसम्बर, 31 दिसम्बर 2017 तक धूमधाम से मनाया जा रहा है। दिनांक 17 दिसम्बर से 27 दिसम्बर तक प्रातः 5:30 से 7:30 तक प्रभात फेरियां निकाली जाएंगी। 24 दिसम्बर को दोपहर 2:00 बजे शोभा यात्रा निकाली जाएगी। दिनांक 27 दिसम्बर से 30 दिसम्बर तक रात्रिकालीन सत्संग में 8:00 से 9:30 बजे तक प्रवचन श्री सुरेश शास्त्री आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब एवं श्री सतीश सुमन एवं श्री सुभाष राही के मधुर भजन होंगे। रविवार 31 दिसम्बर को यज्ञ की पूर्णाहुति 10:00 से 11:00 बजे तक होगी। ध्वारोहण प्रातः 11:30 बजे होगा। 12:00 से 2:00 बजे तक भजन व प्रवचन होंगे। सभी भाईयों बहनों से प्रार्थना है कि अपने रिश्तेदारों व इष्टमित्रों को साथ लेकर इस उत्सव में पधार कर सम्मेलन की शोभा बढाएं व तन-मन व धन से सहयोग करें।

-यशपाल प्रधान आर्य समाज वेद मन्दिर

वैदिक संस्कृति में ब्रह्मचर्य

ले.-मृदुला अग्रवाल 19सी सरत बोस रोड कोलकाता

वैदिक संस्कृति की एक अपूर्व देन है, ''ब्रह्मचर्य''। विश्व की किसी भी संस्कृति ने 'ब्रह्मचर्य' को इतना महत्व नहीं दिया जितना कि भारतीय संस्कृति ने दिया। ''ब्रह्म'' अर्थात् ''परमेश्वर'', ''चर्य'' अर्थात् रमण करना या विचरण करना। परमेश्वर में विचरण करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। अर्थात् परमेश्वर का चिन्तन, मनन और ध्यान करना ही ब्रह्म में विचरण करना कहलाता है। ब्रह्मचर्य रूपी 'तप' से मन एवं भौतिक इन्द्रियों को संयम में रखा जा सकता है। 'तप' अर्थात् अपने कर्त्तव्य-कर्म में सावधानी वर्तना। ब्रह्मचर्य यौन-सम्बन्धी अर्थात् उपस्थ एवं जननेन्द्रिय का संयम है जो कि मनुष्य का शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करता है। 'ब्रह्म' अर्थात् 'परमेश्वर' ही ब्रह्मचारी को बल का सामर्थ्य, ब्रह्मज्ञानी का प्रताप एवं दीर्घायु प्रदान करता है तथा स्वस्थ, बुद्धिमान और यशस्वी भी बनाता है। पतंजलि मुनि ने योगदर्शन पाद 2 सूत्र ३८ में कहा है-''ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः'', अर्थात् ब्रह्मचर्य (वेदों के विचार और जितेन्द्रियता) के अभ्यास में 'वीर्य' (वीरता अर्थात् धैर्य, शरीर, इन्द्रिय और मन के सामर्थ्य) का लाभ होता है।

वेदों में 'ओ३म्' पद का सबसे बड़ा सुख व सहारा है। सारे वेद इसी पद को परमात्म-प्राप्ति का साधन बतलाते है। ''ब्रह्मचर्य-पालन'' इसकी प्राप्ति का सबसे अच्छा साधन है, जिससे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है।

''ब्रह्म'' का दूसरा नाम ''ज्ञान'' है। ''ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'', ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं। ज्ञान से परिष्कृत बुद्धि ही मनुष्य को संसार की अनित्यता एवं आत्मा की नित्यता का बोध कराती है। बुद्धि को विमल बनाने के लिये वेद-विद्या का ज्ञान आवश्यक है। ब्रह्मचारी को वेदों का अध्ययन और उसके अनुसार आचरण अवश्य करना चाहिए। ''हे मनुष्यो! आत्मा, मन और शरीर से ब्रह्मचर्य के साथ विद्याओं में नियत होके विद्या और सुशिक्षा का संचय करो। द्वितीय विद्याजन्म को पाकर पूजित होवो, जिस-जिस के साथ अपना जितना सम्बन्ध है उसको जानो।''-यजुर्वेद, अध्याय-२८, मन्त्र-१५।।

आत्मा निराकार एवं मन भौतिक साकार होने के कारण बुद्धि की सहायता के बिना परमात्मा की ओर प्रवृत्त होना कठिन है। परमात्मा आकाश, वायु, जल, अग्नि और पृथ्वी से भिन्न अनादि, अनन्त, सबसे महान् होने के कारण अत्यन्त सूक्ष्म एवं एक रस है।

'ब्रह्म' का एक नाम 'महान्' अर्थात् 'बृहत्' भी है। जब मनुष्य को शरीर से आत्मा के भिन्न होने का ज्ञान प्राप्त हो जाता है तब स्वाभाविक जीव सच्चिदानन्द होकर शोक-मोह के बन्धन, जन्म-मरण के बन्धन से छूट जाता है। अथर्ववेद, काण्ड-११, सूक्त-५, मन्त्र-१८, के अनुसार-जो पूर्ण आयु पाकर शरीर से आत्मा अलग होती है तो उसे ही मृत्यु को पराजित कर मृत्यु को मारना कहते हैं, जो कि ब्रह्मचर्य के तप से ही सम्भव है-मृत्यु पर विजय पाना। 'इन्द्र' जीवात्मा है, 'देव' इन्द्रियाँ हैं। इन्द्र अर्थात् जीवात्मा ब्रह्मचर्य के द्वारा ही इन्द्रियों (देवों) को सुखी बना सकता है। जीवात्मा ज्ञान के सुख से ब्रह्मानन्द की प्राप्ति करता है अर्थात् परमेश्वर को प्राप्त होता है। ब्रह्मचर्य द्वारा ही इन्द्रियों की अकाल मृत्यु नहीं होती, पूर्ण आयु तक शक्तियाँ बनी रहती हैं।

आत्मा में अनुचित विषयों के भाव तक भी न उठने देना जीवात्मा का ब्रह्मचर्य ही है। भोगी संसार के भोगों में रमा हुआ भी दुःखी है, परन्तु योगी संसार के भोगों (विषयों) पर विजय पाकर संसार के इतने परिवर्तनों में भी सुखी है। ब्रह्मचारी (योगी) ब्रह्मचर्य के तपोबल से परमात्मा के गुणों को प्रकट करके, विद्वानों को प्रसन्न करके, वेद-विद्या के प्रचार से आचार्य का इष्ट सिद्ध करता है। जो वीर्य-निग्राहक एवं वेदपाठक पुरुष है वह प्राण-अपान (श्वास-प्रश्वास विद्या) को, व्यान (सर्व शरीर-व्यापक वायु विद्या) को, वाणी (भाषण-विद्या) को, मन (मनन-विद्या) को, हृदय (के ज्ञान) को, ब्रह्म (परमेश्वर-ज्ञान) को, और धारणावती बुद्धि को जानकर सम्पूर्ण उत्तम गुणों से सम्पन्न होकर विद्याओं का प्रकाश करता है और बुद्धि का चमत्कार दिखाता है। ''मनुष्य परमेश्वर को पिता के समान हितकारी जानकर अपने सब व्यवहारों को स्वस्थ रखे और ब्रह्मचर्य आदि तप तथा सत्य व्यवहार से ईश्वर ज्ञान में तत्पर रहे।''-अथर्ववेद, काण्ड-१२, सूक्त-३, मन्त्र-१२।।

जो मनुष्य ब्रह्मचर्य से आप्त विद्वानों के समीप से विद्या, शिक्षा को प्राप्त हुआ ईश्वर के समान उपकार-दृष्टि से प्रशंसा और सत्कार को प्राप्त हुआ प्रतिदिन उत्तम बुद्धि से समस्त शुभ गुण, कर्म और स्वभावों को धारण करता है वह सम्पूर्ण विद्यावान् होता है।

-ऋग्वेद, मंडल-२, सूक्त-१, मन्त्र-३।।

स्वामी दयानन्द ने 'सत्यार्थ-प्रकाश' में लिखा है कि ब्रह्मचर्य में केवल ब्रह्मयज्ञ और अग्निहोत्र को ही करना होता है। जब तक पूरी विद्या ग्रहण करे तब तक ब्रह्मचर्य को रखना आवश्यक है। विवाह करके भी लम्पटता न करे तो शरीर में प्राण बलवान् होकर सब शुभगुणों का वास रखता है। मनुष्य रोगरहित रहता है। आयु भी दीर्घायु होती है। अखण्ड ब्रह्मचारी अपने तप से सबसे उत्तम चार सौ वर्ष पर्यन्त आयु को बढ़ा सकता है। सब प्रकार के रोगों से रहित धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होता है। यह बड़ा कठिन काम है जो कि काम के वेग को थाम कर इन्द्रियों को अपने वश में रखना। स्वामी दयानन्द से किसी ने पूछा कि ''आपको वासना नहीं सताती क्या?'' उन्होंने उत्तर दिया कि ''मैं स्वयं को किसी न किसी काम में व्यस्त रखता हूँ शायद इसलिये मुझे विषय-वासना नहीं सताती।'' जो मनुष्य ज्ञान के चिन्तन में, वेदों के अध्ययन में, परमेश्वर-प्राप्ति की चेष्टा में संलग्न रहता है वह विषयचारी कैसे हो सकता है।

''स्त्री-पुरूष युवा होकर अविवाहित ही रहकर ब्रह्मचर्य का पालन करें तो गृहस्थाश्रम में प्रवेश बहुत सुन्दर होता है। ब्रह्मचर्य की महिमा इतनी है कि बैल ब्रह्मचर्य के बिना शकट को नहीं खींच सकता, घोड़ा बिना ब्रह्मचर्य के शत्रु पर विजय नहीं पा सकता। जब पशुओं में ब्रह्मचर्य की इतनी महिमा है तो मनुष्य को तो अपने जीवन में लाना ही चाहिये।

-अथर्ववेद, काण्ड-११, सूक्त-५, मन्त्र-१८।।

ब्रह्मचर्य-धर्म से शरीर की पुष्टि, मन की संतुष्टि और विद्या की वृद्धि प्राप्त कर, विवाहित स्त्री-पुरुष यत्न के साथ उत्तम संतान धारण करें।

-यजुर्वेद, अध्याय-८, मन्त्र-२८।।

जो माता-पिता अपने पुत्रों और कन्याओं को ब्रह्मचर्य के साथ वेद-विद्या और उत्तम शिक्षा से युक्त कर शरीर और आत्मा को बल वाले करें तो उन संतानों के लिये अत्यन्त हितकारी हो।

मनुस्मृति, अध्याय-२, श्लोक-१४० में आचार्य के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं:-जो द्विज (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) शिष्य का उपनयन करके कल्प (यज्ञ आदि संस्कार विधि) और रहस्य (उपनिषद् आदि ब्रह्मविद्या) के साथ वेद पढ़ावे, उसको ''आचार्य'' कहते हैं। उपनयन संस्कार में आचार्य ब्रह्मचारी शिष्य को सदाचारी, ज्ञानी एवं बुद्धिमान बनाता है जो कि शिक्षा के तीन मुख्य अंग हैं। शिष्य अपने आचार्य की देख-रेख में रहता है। भौतिक सुखों को त्यागकर वह ज्ञान पाने की इच्छा से गुरु के पास जाता है। आचार्य व गुरु उसे ब्रह्म के समीप ले जाता है और उसके जीवन को सफल बनाता है। उसे सरलता, पवित्रता और धैर्य सिखाता है। आचार्य जब अपने शिष्य ब्रह्मचारी की इच्छा करे तब उस आचार्य को स्वयं भी ब्रह्मचारी होना चाहिए। उस समय वह गृहस्थ-वृत्ति का न हो, उसे अपने परिवार की फिक्र न हो, अपने विद्यार्थी के निरीक्षण में अपना सारा समय दे सके। गृहस्थाश्रम व्यतीत कर वानप्रस्थ या सन्यास आश्रम में प्रवेश कर चुका हो ऐसा आचार्य तो और भी अच्छा होता है। जैसी शिक्षा हो वैसा ही उसका जीवन अर्थात् जीवन का क्रियात्मक पहलू भी ब्रह्मचारी शिष्य के सामने प्रस्तुत कर सकता है। माता जिस प्रकार अपने उदरस्थ गर्म की रक्षा करती है, उसी प्रकार आचार्य भी इस शिष्य-पुत्र की रक्षा करे। आचार्य

(शेष पृष्ठ 7 पर)

मूर्तिपूजा पर स्वामी दयानन्द का दिग्गज विद्वानों से सफल शास्त्रार्थ

ले.-मनमोहन कुमार आर्य, 196 चुक्खूवाला-2 देहरादून-248001

ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में जो महान् कार्य किए उनमें से एक काशी के दुर्गाकुण्ड स्थित आनन्द बाग में लगभग 50-60 हजार लोगों की उपस्थिति में 'मूर्तिपूजा वेदसम्मत नहीं है', विषय पर उनका शास्त्रार्थ भी था जिसमें स्वामी जी विजयी हुए थे। यह शास्त्रार्थ आज से 148 वर्ष पूर्व 16 नवम्बर, 1869 को हुआ था। इस शास्त्रार्थ में दर्शकों में दो पादरी भी उपस्थित थे। जिले के अंग्रेज कलेक्टर शास्त्रार्थ का आयोजन रविवार को कराने के इच्छुक थे जिससे वह भी इस शास्त्रार्थ में उपस्थित रह सके। उनके आने से पण्ड़ित कानून हाथ में लेकर अव्यवस्था व मनमानी नहीं कर सकते थे, अत: काशी नरेश श्री ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह ने इसे मंगलवार को आयोजित किया था। काशी के सनातनी पौराणिक पण्डितों को यद्यपि इस शास्त्रार्थ में मूर्तिपूजा को वेदसम्मत सिद्ध करना था परन्तु पौराणिकों की वेद में गति न होने और मूर्तिपूजा का वेदों में कहीं विधान न होने के कारण वह शास्त्रार्थ में वेदों व प्रमाणिक ग्रन्थों का कोई प्रमाण नहीं दे सके थे। वह विषय को बदलते हुए विषयान्तर की बातें करते रहे। यह शास्त्रार्थ सायं 4 से 7 बजे तक लगभग 3 घंटे हुआ था। इतिहास में ऐसा उदाहरण नहीं मिलता कि स्वामी दयानन्द से पूर्व कभी किसी विद्वान ने मूर्तिपूजा के वेद सम्मत न होने पर शंका वा विश्वास किया हो। महाभारत काल के बाद वह पहले व्यक्ति ही थे जिन्होंने मूर्तिपूजा का खण्डन करने के साथ उसे वेद विरुद्ध घोषित किया था।

स्वामी शंकराचार्य जी की पुस्तक विवेक चूडामणि में भी ईश्वर के सर्वव्यापक व निराकार स्वरूप का वर्णन किया गया है परन्तु उसमें मूर्तिपूजा के वेदसम्मत होने या न होने पर शंका नहीं की गई है और न किसी को शास्त्रार्थ की चुनौती ही दी गई है। ऋषि दयानन्द को परमात्मा से अति उच्च कोटि की परिमार्जित दिव्य बुद्धि व विवेक प्राप्त हुआ था। उन्होंने न केवल मूर्तिपूजा को अवैदिक घोषित कर उसका खण्डन किया अपितु देश की उन्नति में सर्वाधिक बाधक, देश के पराभव, पराधीनता एवं सभी बुराईयों का कारण मूर्तिपूजा को ही माना है। उनके अनुसार ईश्वर पूजा के स्थान पर मूर्तिपूजा ईश्वर प्राप्ति का साधन नहीं है अपितु यह एक ऐसी गहरी खाई है कि जिसमें मूर्तिपूजक गिर कर नष्ट हो जाता है। यह ज्ञातव्य है कि कोई भी कार्य यदि विधिपूर्वक न किया जाये और साधक को इष्ट देव का सच्चा स्वरूप व प्राप्ति की विधि ज्ञात न हो तो वह कभी ईश्वर को प्राप्त नहीं कर सकता। यह आश्चर्य की बात है कि भारत में उपासना के लिए योग और सांख्य दर्शन जैसे ग्रन्थ होते हुए काशी के शीर्ष विद्वान भी मूर्तिपूजा का समर्थन करते थे और स्वयं भी ईश्वर के यथार्थ गुणों के आधार पर यम-नियम का पालन तथा धारणा एवं ध्यान न करते हुए पाषाण व धातुओं की बनी हुई मूर्तियों को धूप व नैवेद्य देकर ईश्वर पूजा की इतिश्री समझते थे। यह उनकी घोर अविद्या थी। आज भी हमारे पौराणिक सनातनी भाई मूर्तिपूजा करते हैं। उनके विवेकहीन अनुयायी भी उनका अनुकरण व अनुसरण करते हुए विधिहीन तरीके से पूजा करके ईश्वर के पास जाने के स्थान पर उससे दूर हो जाते हैं जिसकी हानि उन्हें इस जन्म व भावी जन्मों में उठानी पड़ती है। जो भी मनुष्य मूर्तिपूजा करेगा वह भी इससे होने वाली हानियों को उठायेगा। इसका उल्लेख ऋषि दयानन्द अपने प्रमुख ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में मूर्तिपूजा में सोलह प्रकार के दोषों को सप्रमाण व तर्क के साथ किया है।

मूर्तिपूजा पर स्वामी दयानन्द जी के कुछ विचारों की चर्चा भी कर लेते हैं। उनके अनुसार मूर्तिपूजा का आरम्भ जैन मत से हुआ। सत्यार्थप्रकाश में वह लिखते हैं कि जैनियों ने मूर्तिपूजा अपनी मूर्खता से चलाई। जैनियों की ओर से वह एक कल्पित प्रश्न प्रस्तुत करते हैं कि शान्त ध्यानावस्थित बैठी हुई मूर्ति देख के अपने जीव वा आत्मा का भी शुभ परिणाम वैसा ही होता है। इसका उत्तर देते हुए स्वामी दयानन्द जी कहते हैं कि आत्मा वा जीव चेतन और मूर्ति जड़ गुण वाली है। क्या मूर्ति की पूजा करने से जीवात्मा भी अपने ज्ञान आदि गुणों से क्षीण व शून्य होकर जड़ हो जायेगा? स्वामी जी कहते हैं कि मूर्तिपूजा केवल पाखण्ड मत है तथा मूर्तिपूजा जैनियों ने चलाई है। स्वामी दयानन्द जी ने सत्यार्थप्रकाश में चौदह समुल्लास लिखे हैं। बारहवां समुल्लास जैन मत की मान्यताओं की समीक्षा पर लिखा है। उस समुल्लास में भी स्वामी जी ने जैन मत की मूर्तिपूजा विषयक मान्यताओं का सप्रमाण खण्डन किया है। मूर्तिपूजा का खण्डन करते हुए स्वामी जी अनेक प्रबल तर्क देते हैं। वह कहते हैं कि जब परमेश्वर निराकार, सर्वव्यापक है तब उस की मूर्ति ही नहीं बन सकती और जो मूर्ति के दर्शनमात्र से परमेश्वर का स्मरण होवे तो परमेश्वर के बनाये पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति आदि अनेक पदार्थ, जिन में ईश्वर ने अद्भुत रचना की है, क्या ऐसी रचनायुक्त पृथिवी, पहाड़ आदि परमेश्वर रचित महामूर्तियां की जिन पहाड़ आदि से वे मनुष्यकृत मूर्तियां बनती हैं, उन को देख कर परमेश्वर का स्मरण नहीं हो सकता? जो मूर्तिपूजक कहते हैं कि मूर्ति के देखने से परमेश्वर का स्मरण होता है, उनका यह कथन सर्वथा मिथ्या है, इसलिए कि जब वह मूर्ति उनके सामने न होगी तो परमेश्वर के स्मरण न होने से वह मनुष्य एकान्त पाकर चोरी, जारी आदि कुकर्म करने में प्रवृत्त भी हो सकते हैं। वह क्योंकि जानते हैं कि इस समय यहां उन्हें कोई नहीं देखता। इसलिये वह मूर्तिपूजक अनर्थ करे बिना नहीं चूकता। इत्यादि। ऐसे अनेक दोष पाषाणादि मूर्तिपूजा करने से सिद्ध होते हैं। यह भी बता दें कि काशी शास्त्रार्थ से पूर्व वहां के शीर्ष विद्वान पण्डितों ने अपने शिष्य व विद्वानों को स्वामी दयानन्द जी की विद्या की परीक्षा वा जानकारी लेने के लिए गुप्त रूप से उनके पास भेजा था। यह विद्वान थे रामशास्त्री, दामोदर शास्त्री, बालशास्त्री और पं. राजाराम शास्त्री आदि। यह विद्वान स्वामी जी के पास उनका शास्त्रीय ज्ञान का स्तर जानने के लिए आये थे। काशी के पण्डित अपने पक्ष की निर्बलता को जानते थे। इसलिए वह राजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह के कहने पर भी शास्त्रार्थ के लिए उत्साहित नहीं हो रहे थे। इस कारण राजा ने उन्हें प्रत्यक्ष रूप से स्वामी दयानन्द जी से शास्त्रार्थ करने के निर्देश व आज्ञा दी थी।

राजा जी ने मूर्तिपूजा से उन्हें प्राप्त होने वाली सुख सुविधाओं व धन वैभव का भी हवाला दिया था। यह भी ज्ञातव्य है कि स्वामी जी के वेद प्रचार व मूर्तिपूजा के खण्डन से काशी के लोग बड़ी संख्या में प्रभावित हो रहे थे और मूर्तिपूजा करना छोड़ रहे थे। इसका मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी काशी नरेश व पण्डितों पर पड़ रहा था परन्तु मूर्तिपूजा के पक्ष में शास्त्रीय प्रमाण न होने के कारण वह किंकर्तव्यविमूढ़ बने हुए थे। काशी के प्रमुख पण्डित पं. बालशास्त्री आदि ने अपने शिष्यों पं. शालिग्राम शास्त्री, पं. ढुंढिराज शास्त्री धर्माधिकारी, पं. दामोदर शास्त्री तथा पं. रामकृष्ण शास्त्री आदि को स्वामी जी के निकट भेजकर स्वामी जी द्वारा मान्य प्रमाणिक ग्रन्थों की सूची लाने के लिए भेजा था। बाद में काशी नरेश ने अनुरोध किया और पुलिस कोतवाल पं. रघुनाथ प्रसाद ने मध्यस्थता की तो स्वामी जी ने अपने द्वारा मान्य प्रामाणिक ग्रन्थों की सूची स्वहस्ताक्षर सहित उन्हें दे दी। उनके द्वारा उस समय जो 21 शास्त्र प्रमाण कोटि में स्वीकार किये गये वे थे चार वेद संहिताएं, चार उपवेद, वेदों के 6 अंग, 6 उपांग तथा प्रक्षिप्त श्लोकों को छोड़कर मनुस्मृति।

शास्त्रार्थ के दिन स्वामी दयानन्द जी के एक भक्त पं. बलदेव प्रसाद शुक्ल ने स्वामी जी से कहा कि महाराज, यह काशी नगरी गुणों का घर है। यदि यह शास्त्रार्थ फर्रूखाबाद में होता तो वहां आपके दस बीस भक्त और अनुयायी सामने आते परन्तु यहां काशी में तो आपको शत्रुओं के शिविर में जाकर रण

(शेष पृष्ठ 7 पर)

क्या वैदिक संस्कृति अनन्य थी?

ले० शिवनारायण उपाध्याय, 73 शास्त्री नगर दादाबाड़ी, कोटा

(गतांक से आगे)

फिर यह कहा गया है कि ये बौद्धिक मंत्र तो कुछ पुजारियों के गहन अध्ययन का फल है, यह सम्पूर्ण राष्ट्र की प्रतिभा की बहती हुई ज्ञान की धारा नहीं है। इसका क्या अर्थ है।

नि:सन्देह हम इन सभी बौद्धिक कवियों को यदि हम चाहें तो पुजारी कह सकते हैं। और कोई भी व्यक्ति इस बात को अस्वीकार नहीं करेगा कि ये सम्पूर्ण कविताएं धार्मिक, नीति, दर्शन शास्त्र को लेकर ही नहीं है परन्तु उसी तरह वे बलि तथा रस्मों के विषय में भी कई कविताएं हैं। ऋग्वेद में हमें ऐसे मंत्र मिलते हैं जो हमें देवों व परमेश्वर के विषय में, बलिदान तथा युद्ध के विषय में भी बहुत कुछ बताते हैं। उन बौद्धिक ऋषियों को पूरी ग्रामीण जनसंख्या की ओर से जिसके वे स्वयं भी सदस्य थे, बोलने का पूर्ण अधिकार था वसिष्ठ को ही लो वह हर तरह से एक पुरोहित ही था परन्तु इससे हमको यह कल्पना नहीं करनी चाहिए कि वह कुछ कार्दिनल मेंनिङ्ग की तरह ही था। हम कितने ही व्यर्थ के तर्क लगावे परन्तु फिर भी यह महान् सत्यता ऋग्वेद के विषय में बच रहती है कि उसमें जो कविताएं (मंत्र) हैं वे पूर्ण शुद्ध भाषा में हैं तथा उनमें छन्द शास्त्र का पूर्ण उपयोग हुआ है। तो पुन: एक बार हम कहें कि जब बर्फीले प्रलय काल के बाद पृथ्वी रहने योग्य बनी तो ऋग्वेद के ऋषि ही वास्तव में आदिम नहीं थे। यदि हम आदिम का यह अर्थ लें कि उन्हें अग्नि का ज्ञान नहीं था, जो साधारण चमनक पत्थर का उपयोग करते थे और कच्चा मांस खाते थे। तो फिर वैदिक ऋषि आदिम नहीं थे। यदि हम आदिम का यह अर्थ लें कि वे कृषि करना नहीं जानते थे, उनके कोई शासक नहीं थे, कोई बलि प्रथा नहीं थी, कोई कानून नहीं थे तो मैं देखता हूँ कि वैदिक ऋषि आदिम नहीं थे। परन्तु यदि हम आदिम का अर्थ यह ले कि वे पहले मनुष्य जो आर्य जाति में अपने पीछे साहित्य के चिन्ह छोड़ गये हैं तब मैं कहूँगा कि वे थे। आदिम थे। वैदिक भाषा आदिम है, वैदिक धर्म भी आदिम है और किसी भी अन्य चीज से अधिक आदिम यदि हम सम्पूर्ण को लें और हम अपनी जाति के पूरे इतिहास में से प्राप्त करें।

जब इन सब आपेक्षों का उत्तर दे दिया गया तो एक अन्तिम चाल चली। कहा गया है कि प्राचीन वैदिक कविताएं यदि विदेशी उत्पत्ति की नहीं थी तब भी उन पर सेमेटिक सभ्यता का बहुत अधिक प्रभाव था। मैक्स मुलर को यह आपेक्ष भी सहन नहीं था अत: उन्होंने कहा–

The Vedic Religion was the only one of the development of which took place without any extraneous influences and could be watched through a longer series of ceturies than any other religion.... In India alone any more partiparticularly in vedic India we see a plant entirely grown on native soil and entirely nurtured by native air. For this reason because the religion of the Veda was so completely gurded from all strang infections, it is full of lessons which the student of religion could learn nowher else.

वेद के समालोचक लोग अब क्या कहते हैं? वे कहते हैं कि वेद की ऋचाओं में बेबीलोनिया का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। अब मुझे विस्तृत रूप से कुछ और कहना है क्योंकि चाहे यह बात छोटी दिखाई देती है परन्तु इसमें बहुत अधिक विस्तृत परिणाम छिपा हुआ है। ऋग्वेद में एक ऋचा है जिसका अनुवाद इस प्रकार हुआ है–ओ इन्द्र! हमें एक चमकीला हीरा, एक गाय, एक घोड़ा और एक गहना दो तथा इनके साथ ही एक स्वर्णिम मान Golden Mana भी दो। अब प्रश्न उपस्थित होता है कि यह स्वर्णिम मान (Mana) क्या है? यह शब्द इस जगह के अतिरिक्त वेद तथा अन्य शास्त्रों में कहीं नहीं आया है। वैदिक विद्वानों ने इस लेटिन भाषा के Mina तथा यूनानी भाषा के Mna फोनिशियन भाषा के Manah के समान माना है तथा यह ठीक तरह से जाना जाता है कि यह तो वस्तुओं के तोलने का बाट है तथा ब्रिटिश अजायब घर में रखा है। यदि यही शब्द वेद में इसी अर्थ आया होता तो यह सिद्ध होता कि बेबिलोनिया एवं भारत में पुरातन काल में व्यापारिक सम्बन्ध थे। यद्यपि यह किसी भी तरह से सिद्ध नहीं करेगा कि वेद सेमेटिक धर्म से प्रभावित थे। वे फिर Mana का अर्थ दो बाजू बन्द करते हैं तथा कहते है कि जब इन्द्र से चमकीला हीरा, गाय और घोड़ा मांगा जा रहा है तब तौलने का सोने का बाट क्यों मांगा जावेगा? यह तो वास्तव में सोने का जेवर हो सकता है। परन्तु बेबिलोनिया के केवल इस एक ही प्रभाव की बात नहीं है! सत्ताइस नक्षत्र अथवा सत्ताइस नक्षत्र मंडल भी बेबिलोनिया से भारत में आये हैं, ऐसा माना जाता है! परन्तु भारत में 27 नक्षत्र मंडल चन्द्रमा से सम्बन्धित माने जाते हैं जबकि बेबिलोनिया में इनका सम्बन्ध सूर्य से है। यह भी मान लिया जावे कि नक्षत्र मंडलों की खोज बेबिलोनिया में हुई। वहीं चन्द्रमा से सम्बन्धित नक्षत्र मण्डल खोजे गये तब भी वैदिक साहित्य से सम्बन्धित कोई भी व्यक्ति तथा प्राचीन संस्कारों से सम्बन्धित व्यक्ति को इस बात से साधारणरूप से फुसलाया नहीं जा सकेगा कि हिन्दू लोगों ने आकाश का साधारण विभाजन बेलिलोनिया से सीखा।

यह अच्छी प्रकार से जाना जाता है कि हिन्दुओं के अधिकांश संस्कार चन्द्रमा पर निर्भर है बजाय सूर्य के ऊपर निर्भर होने के। जैसा कि Psalmist कहता है 'परमात्मा ने चन्द्रमा को मौसम बनाने के लिए नियुक्त किया है। ऋग्वेद की एक ऋचा में कहा गया है–'वे अपनी ऊर्जा से गमन करते हैं, एक के बाद दूसरा पूर्व से पश्चिम की ओर खेलते हुये शिशुओं के समान वे यज्ञ की परिक्रमा करते हैं। इनमें से एक सूर्य सम्पूर्ण संसार को देखता है और दूसरा चन्द्रमा बार-बार उत्पन्न होता है तथा ऋतुओं का निर्माण करता है। प्रतिदिन नया नया बनता है। जो रीति रिवाज प्रतिदिन मनाये जाते है जैसे पञ्चमहायज्ञ और अमावस्या तथा पूर्णिमा को विशेष यज्ञ होते थे इसी तरह ऋतु यज्ञ होते थे, प्रत्येक ऋतु चार माह की होती थी, साथ ही अर्द्धवार्षिक यज्ञ। तब फिर 27 नक्षत्र तो चन्द्रमा के मार्ग पर स्पष्ट रूप से बताये जाते थे। इसके लिए बेबिलोनिया जाने की क्या आवश्यकता थी। भारतीय चरवाहे चन्द्रमार्ग को तो प्रतिदिन ही देखा करते थे।

इसी प्रकार की एक घटना और है जिसके विषय में भी तर्क दिये गये हैं कि इस पर बेबिलोनिया का प्रभाव है। वह है मूसलाधार वर्षा द्वारा प्रलय उत्पन्न होना साथ ही सब घटनाओं में सेमेटिक धर्म का भी प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। यह आख्यान जैसा कि आप जानते हैं कई जातियों में पाया जाता है और एक आश्चर्य जनक बात तो यह है कि वैदिक ऋचाओं में कहीं भी इसका कोई वर्णन नहीं आया है।

जब कि मिश्र के काव्यों में नाना प्रकार की मूसलाधार वर्षा का खासकर विस्तृत वर्णन है तथा बाद की पुराणों में भारतीय जनता की धार्मिक परम्परा में यह एक जाना पहिचाना विषय है। एक मूसलाधार वर्षा के द्वारा प्रलय के विषय में वरूण के तीन अवतारों से सम्बन्धित बताया गया है। मत्स्य अवतार, कूर्म अवतार तथा बारह अवतार।

वरूण हर अवसर पर अनेक अवतार द्वारा मनुष्य को वर्षा के द्वारा नष्ट होने से बचाता है। प्रारम्भ में जब वेद की ऋचाओं में इन प्रलयों का वर्णन नहीं पाया गया तब सोचा गया कि यह वर्णन प्राचीन भारतीय साहित्य में बाद में कहीं से प्रवेश कर गया। परन्तु जब वैदिक साहित्य और अधिक प्रकाश में आया तब प्रलय की कहानियां ज्ञात हुई, वेद की ऋचाओं में नहीं ब्राह्मण ग्रन्थों में ये पायी गई। मत्स्य अवतार की कथा शतपथ ब्राह्मण में मिली। फिर वे उस कथा को सुनाकर दूसरी जातियों की इसी विषय की कथाओं से तुलना कर, उनमें अन्तर बतलाकर, नाना तर्कों के द्वारा यह सिद्ध कर देते हैं कि इन तीनों अवतारों की कथाओं में भी बाहरी प्रभाव नहीं है। स्थानाभाव से यहां कथा नहीं दी जा सकती है। इस व्याख्यान में वास्तव में उन्होंने तर्क पूर्ण तरीके से यह सिद्ध कर दिया है कि वैदिक संस्कृति अनन्य है, अनूठी है, उस पर किसी दूसरी संस्कृति का प्रभाव नहीं है। इति

आर्य मर्यादा साप्ताहिक पढ़ें और दूसरों को पढ़ाएं तथा लाभ उठाएं।

पृष्ठ 4 का शेष-वैदिक संस्कृति...

उस ब्रह्मचारी को तीन रात तक अपने उदर में रखता है। ब्रह्मचारी जब तक ब्रह्मचर्य आश्रम में है, तब तक मानो वह रात्रिकाल में है, क्योंकि अभी तक उसके हृदय में विद्यासूर्य का पूर्ण प्रकाश नहीं हुआ। तीन रात आचार्य के उदर में शयन करता है अर्थात् आचार्य की पूर्ण सुरक्षा में रहता है। आचार्य उसके उत्तम गुणों की परीक्षा लेता है। जब आचार्य की शरण से बाहर संसार में आता है अर्थात् पैदा होता है, तब ऐसे 'आदित्य-ब्रह्मचारी' (सूर्यसम प्रकाशमान तथा तेजस्वी) को विद्वान् एवं गुणीजन मान-सम्मान देते हैं और इस नवोत्पन्न के दर्शन के लिये टोली बाँधकर आते हैं-''तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवा:''

-अथर्ववेद, काण्ड-११, सूक्त-५, मन्त्र-३।।

ब्रहाचारी को उसके नये जीवन में सुख-सामग्री दिलाना आचार्य का काम होता है। ब्रह्मचारी हवन में तीन समिधायें छोड़कर, मेखला से कटिबद्ध होकर, परिश्रम से, इन्द्रिय मन रूपी तप से, समुद्र के समान गम्भीर ब्रह्मचर्य के साथ, पृथिवी, सूर्य एवं अन्तरिक्ष विद्या को जानकर, विद्यारूप जल में स्नान करके आचार्य की संतुष्टि से स्नातक होकर और समावर्तन करके संसार का उपकार करते हुए, ऋषियों के समान सारे शुभकार्य करते हुए कीर्तिमान व यशस्वी होता है। ब्रह्मचारी में सम्पूर्ण दिव्य गुण विद्यमान रहते हैं। वह अपना सम्पूर्ण ज्ञान एवं उत्तम शिक्षा को सब में (विद्वानों में) दान कर ऐश्वर्यवान तथा प्रतिष्ठित होता है। संसार में जितना भी ज्ञान है उसका आदि स्रोत ''ब्रह्म'' व ''परमेश्वर'' ही है। परमेश्वर के नियम से सब प्राणी शरीर धारण करके ब्रह्मचर्य के पालन से उन्नति करते हैं। इसी प्रकार ''समलैंगिक व्यक्ति'' भी ब्रह्मचर्य तप से स्वयं को स्वस्थ रख सकते हैं। ''समलैंगिकता'' एक प्रकार का यौन-सम्बन्धी रोग है जिसे ब्रह्मचर्य से शीत-उष्ण आदि के द्वन्द्व को सहन करके, आलस्य को त्यागकर, ब्रह्मज्ञान को प्राप्त कर, तप से, योगाभ्यास से, सन्मार्ग-दर्शन से, सूर्य-समान प्रकाश करके, सबके हितकारी होकर, श्रवण-मनन एवं निदिद्यासन से प्रतिबन्धित किया जा सकता है। (श्री खुशहाल चन्द्र जी आर्य ने अपने ग्रन्थ ''खुशहाल-लेखावली'' में इस प्रसंग को विस्तार में लिखा है)

आज फिर विरजानन्द जैसे गुरु व आचार्य तथा महर्षि दयानन्द जैसे पूर्ण ब्रह्मचारी शिष्य की आवश्यकता है। आचार्य के ज्ञानरूपी प्रकाश से राष्ट्र चमक उठता है। ब्रह्मचारी शिष्य में भी सद्गुणों का विकास होता है।

स्वामी श्रद्धानंद बलिदान दिवस मनाया जायेगा

स्त्री आर्य समाज स्वामी दयानन्द बाजार लुधियाना में 22 दिसम्बर को 3 से 5 बजे तक मनाया जाएगा। इस अवसर पर आर्य समाज के कई विद्वान पधार रहे हैं इसलिये आप से निवेदन है कि इस अवसर पर पधार कर धर्म लाभ उठावें। **-माता जनक आर्या**

न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे।। -ऋ० ७.३२.२३

भावार्थ = परमेश्वर के तुल्य न कोई हुआ है और न कोई होगा। सारे ब्रह्माण्ड उसी के बनाए हुए हैं और वही सबका पालन-पोषण कर रहा है। अतएव हम सब नर-नारी, उसी से गौ आदि अश्वादि उपकारक पशु और अन्न, जल, बल, धन ज्ञानादि मांगते हैं। क्योंकि बड़े राजा महाराजादि भी उसी से भिक्षा माँगने वाले हैं, हम भी उसी सबके दाता परमात्मा से इष्ट पदार्थ माँगते हैं।

पृष्ठ 5 का शेष-मूर्तिपूजा पर स्वामी ...

कौशल दिखाना होगा। दृढ़ व अपूर्व ईश्वर विश्वासी स्वामी दयानन्द का पं. बलदेव जी को उत्तर था-बलदेव! डर क्या है? एक ईश्वर है, एक मैं हूं, एक धर्म है, और कौन है? सत्य का सूर्य प्रबल अज्ञान और अविद्या के अंधकार पर अकेला ही विजयी होता है। अपने अटल ईश्वर विश्वास के बल पर ही दयानन्द जी ने जड़ उपासना के प्रतीक ऋण दुर्ग काशी को अकेले ही भेदने का निश्चय किया था। शास्त्रार्थ के दिन स्वामी जी ने क्षौर कर्म कराया था, उसके बाद स्नान किया, शरीर पर मूर्त्तिका धारण की, इसके बाद पद्मासन लगाकर देर तक परमेश्वर का ध्यान किया। इसके बाद उन्होंने भोजन उन्होंने भोजन किया। भोजन के बाद वह शास्त्रार्थ स्थल आनन्दबाग में शास्त्रार्थ आरम्भ होने के समय 4 बजे से पूर्व पहुंच गये थे। यह लेख पर्याप्त विस्तृत हो गया है। हम इस लेख में स्वामी दयानन्द जी के विपक्षी विद्वानों से हुए प्रश्नोत्तर भी देना चाहते थे परन्तु विस्तार भय से नहीं दे पा रहे हैं। इतना ही महत्वपूर्ण है कि काशी के पण्डितों ने वेदों से मूर्तिपूजा का कोई प्रमाण न देकर स्वामी जी विषयान्तर करने का प्रयत्न किया।

स्वामी जी के सभी प्रश्नों, धर्म व अधर्म मनु स्मृति के अनुरूप लक्षण वा उत्तर भी वह न बता पाये। शास्त्रार्थ चल ही रहा था कि पं. विशुद्धानन्द शास्त्री जी ने अपनी विजय घोषित कर दी और शास्त्रार्थ स्थल से अपने अनुयायियों की भीड़ के साथ ढोल बाजे बजाते हुए चले गये। पराजय में भी उत्सव मनाना हमारे पौराणिक विद्वानों को आता है।

आर्य समाज दाल बाजार का वेद सप्ताह हर्षोल्लास से सम्पन्न

आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना के वेद सप्ताह के अवसर पर उपस्थित जन समूह एवं चित्र दो में मंच पर विराजमान स्वामी आनन्दवेश जी, आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी सम्बोधित करते हुये जबकि उनके साथ बैठे हैं कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी, आचार्य उमेश जी एवं अन्य।

आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना का वेद सप्ताह 20 नवम्बर से 26 नवम्बर रविवार तक बड़ी धूमधाम से मनाया गया। 20 नवम्बर दिन सोमवार से सुबह हवन यज्ञ के साथ वेद सप्ताह का शुभारम्भ किया गया। सोमवार मुख्य यजमान राजेश मरवाहा जी और यज्ञ ब्रह्मा आचार्य अरविन्द जी शास्त्री से गायत्री महायज्ञ शुरू हुआ। मंगलवार मुख्य यजमान आर्य सुमित टंडन और रेणु टण्डन, बुधवार मुख्य यजमान चरणजीत पाहवा जी, वीरवार मुख्य यजमान वेदप्रिय चावला, शुक्रवार संजीव चड्ढा जी, शनिवार मुख्य यजमान अजय सूद जी और उनका परिवार रहा। इसके अलावा और यजमान रेणु वधवा, माता सुलक्षणा जी, किरण कपूर, प्रवीण कुमारी, शशि आहूजा, बाला गम्भीर जी, अनिल कुमार जी, सुभाष अबरोल जी, सतपाल नारंग, ओम प्रिय चावला, कपिल नारंग जी आदि परिवार सुबह दैनिक हवन यज्ञ में सम्मिलित हुये। सोमवार से बुधवार तक दैनिक सुबह 7.30 बजे से 8.30 बजे तक हवन यज्ञ हुआ जिसमें ब्रह्मा आचार्य अरविन्द जी शास्त्री और 8.30 बजे से 9.00 बजे तक भजन सुभाष अबरोल जी, किरण टंडन जी, बाला गम्भीर जी, राजेन्द्र बत्रा जी, अनिल कुमार जी, संजीव चड्ढा जी और 9.00 बजे से 9.30 बजे तक प्रवचन आचार्य अरविन्द शास्त्री जी के हुये। सुबह प्रतिदिन अल्पाहार नाश्ता भी सब को दिया गया।

23 नवम्बर दिन वीरवार से दैनिक सुबह 7.30 बजे से 9.30 बजे तक और सायं 7.00 बजे से 9.00 बजे तक गायत्री महायज्ञ, भजन और प्रवचन हुए। आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना में पधारने वाले मुख्य भजनोपदेशक बरेली से आचार्य सत्यदेव शास्त्री जी और उनके पुत्र राष्ट्रवीर जी और मुजफ्फरपुर से सतीश सुमन जी, प्रवचन आगरा से पधारे आचार्य उमेश जी और गुरुकुल शुक्रताल से पधारे स्वामी आनन्दवेश जी के हुये।

26 नवम्बर 2017 को वेद सप्ताह की पूर्णाहूति 11 कुंडीय यज्ञ के साथ सम्पूर्ण हुई। गायत्री महायज्ञ रविवार को मुख्य यजमान राजेश मरवाहा जी और यज्ञ ब्रह्मा आचार्य अरविन्द जी शास्त्री आर्य समाज दाल बाजार ने और आचार्य उमेश चन्द्र जी आगरा ने वेद मंत्रों के साथ यज्ञ को सम्पन्न करवाया। गायत्री महायज्ञ के बाद ओ३म् ध्वज मुख्य अतिथि अखिल बहल द्वारा फहराया गया। कलश स्थापित कुलदीप थापर जी द्वारा हुआ। ज्योति प्रज्जवलित दाल बाजार हौजरी एसोसिएशन के प्रधान राजा धीर और हैप्पी खुराना जी द्वारा की गई। बरेली से पधारे आचार्य सत्यदेव जी और उनके सुपुत्र राष्ट्रवीर जी द्वारा सुन्दर भजन प्रस्तुत किये गये। सतीश सुमन जी और आर्य समाज समराला के शास्त्री आचार्य राजेन्द्र जी के भी सुन्दर भजन हुये। शुक्रताल गुरुकुल उत्तर प्रदेश से पधारे स्वामी आनन्दवेश जी ने प्रवचन किया और स्वामी दयानन्द जी द्वारा जीवन में किये गये तप के बारे में बताया और सभी आर्यों से आह्वान किया गया कि आप समाज में फैली हुई बुराइयों के खिलाफ कुरीतियों के खिलाफ मिल कर आवाज उठाए। आचार्य उमेश चन्द्र जी ने मानव जीवन में धर्म की महता के बारे में बताया और स्त्रियों के सम्मान की बात की। हमें समाज में जागरूकता फैलानी चाहिये। स्त्रियों के सम्मान में सब को आगे आना चाहिये। आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उप प्रधान श्री सरदारी लाल जी और कोषाध्यक्ष श्री सुधीर शर्मा जी ने भी अपने अपने विचार रखे कि कैसे आज युवाओं को आर्य समाज से जोड़ा जाए।

आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना के महामंत्री आर्य सुरेन्द्र टंडन ने मंच संचालन किया और आए हुये सभी विद्वानों और भजनोपदेशक का मान सम्मान किया। अंत में आर्य समाज दाल बाजार लुधियाना के प्रधान श्री सतपाल नारंग और वेद सप्ताह कार्यक्रम के अध्यक्ष ए.के. कलसी जी ने सब का धन्यवाद किया। कार्यक्रम की व्यवस्था और कार्यक्रम में सहयोग, लंगर व्यवस्था आर्य वीर दल के सदस्यों अंकित आर्य, अजय मोंगा, मोहित महाजन, अर्पण पाहवा, गौरव पाहवा, सिद्धान्त अबरोल, दीपक चोपड़ा, सचिन टंडन, कपिल नारंग, गौरव उप्पल, अजय महाजन, नयन चड्ढा आदि ने गई। इस कार्यक्रम में आर्य समाज दाल बाजार के मंत्री सुरेन्द्र टंडन, रमाकांत महाजन, संत कुमार आर्य, सुरेन्द्र शास्त्री, योगराज शास्त्री, सुरेश मुंजाल, श्रवण बत्रा, सुरेश चड्ढा, सुभाष अबरोल, किरण टंडन, संजीव चड्ढा, वेद प्रिय चावला, विजय कुमार स्याल, विनोद गांधी, बलजिन्द्र भंडारी, माता जनक आर्या, अनिल आर्य, माता सुलक्षणा जी, पुष्प खुल्लर, विजय सरीन, महेन्द्र प्रताप आर्य, सतवीर जी, के.के.पासी, अशोक वैद्य, अरुण सूद, इन्द्रा शर्मा जी, किरण नागपाल जी, अजय सूद, राजेश मरवाहा, दीपक चोपडा आदि ने बढ़ चढ़ कर भाग लिया।

पृष्ठ 1 का शेष-सर्वस्व त्यागी स्वामी श्रद्धानन्द

और धर्मकार्य के लिए भी था। अत: यह बलिदान इतिहास में अपूर्व था। इसलिए धार्मिक एवं राष्ट्रीय दोनों क्षेत्रों में स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम अमर रहेगा।

स्वामी श्रद्धानन्द जी ने राष्ट्रीयता के निर्माण के लिए स्वधर्म और संस्कृति की रक्षा के लिए अपने प्राचीनमय इतिहास की रक्षा एवं प्रचार के लिए भारतीयों को सच्चे अर्थों में भारतीय बनाने के लिए तथा जन्म जातिगत भेदभाव गरीब और अमीर का भेदभाव मिटाकर सबको समान स्तर पर लाने के लिए जिस आदर्श गुरूकुल को जन्म दिया था, उसने मैकाले की शिक्षा पद्धति का प्रखरता से बिना शासन से सहायता लिए प्रबल सामना किया।

प्रत्येक वर्ष की भांति इस वर्ष भी स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस 23 दिसम्बर को मनाया जा रहा है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने देश, धर्म और जाति के लिए अपना बलिदान दिया था। उन्होंने अपने हित को त्यागकर राष्ट्रहित को अपनाया। मुन्शीराम से महात्मा मुन्शीराम और महात्मा मुन्शीराम से स्वामी श्रद्धानन्द तक का उनका सफर बहुत ही प्रेरणादायक है। उनके द्वारा लिखित स्वआत्मचरित कल्याण मार्ग का पथिक पढ़कर हर व्यक्ति अपने जीवन को आदर्श एवं कल्याण मार्ग का पथिक बना सकता है। स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस मनाते हुए हम भी उनके आदर्शों, उनके कार्यों को अपने जीवन में अपनाएं। प्रतिवर्ष स्वामी श्रद्धानन्द जी का बलिदान दिवस हमें प्रेरणा देता है कि महर्षि दयानन्द के ऋण से उऋण होने के लिए हमें कार्य करना चाहिए। अगर हम स्वामी श्रद्धानन्द जी को सच्ची श्रद्धांजलि देना चाहते हैं तो उनके द्वारा राष्ट्र के लिए किए गए कार्यों को अपनाना होगा, स्वामी श्रद्धानन्द जी ने जो मार्ग दिखाया है, उस मार्ग पर चलना पड़ेगा। तभी हम उन्हें सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित कर सकते हैं।

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा गायत्री प्रिंटिंग प्रैस, मण्डी रोड जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। **E-mail: apspunjab2010@gmail.com, www.aryapratinidhisabha.org**
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।